कबीर–काव्य का सामाजिक सौंदय

डॉ. आर.पी. वर्मा

असि. प्रो. एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय गोसाईखेड़ा,
जनपद–उन्नाव, उ.प्र.

कबीर कर्मनिष्ठ साधक थे। उन्होनें अपनी निजी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देने के लिए समाज को आधार बनाया। कबीर की कविताओं में मानवीय मूल्यों का जितनी तीव्रता से प्रतिपादन हुआ है, उससे उनके तीखे तेवर का पता चलता है। वह समाज – सुधारक या संत नहीं थे, बल्कि समाज की विषमताओं को जनता के समक्ष लाना चाहते थे। वह परिधान से नहीं, कार्य से संत थे। कबीर के काव्य का एक महत्वपूर्ण पक्ष उनके सामाजिक विचार हैं। समाज में व्याप्त कुरीतियों तथा अंधविश्वासों के उन्मूलन हेतु वह जीवनपर्यंत प्रयत्नशील रहे। यही कारण है कि उनके विचार आज भी प्रासंगिक हैं। इसी प्रकार उनकी कविता का दूसरा पक्ष साधना एवं रहस्यात्मक विचार हैं, जिसके सहारे उन्होनें ईश्वर संबंधी अपने विचार रहे हैं। किसी भी व्यक्ति के ज्ञानी होने के लिए शिक्षा जरूरी हो, ऐसा आवश्यक नहीं। कबीर ने बिना किसी सिद्धांत या वाद में बंधे अपने ज्ञान का भंडार सबके लिए खुला रखा। जाति – पांति का विरोध, बाह्याचार के प्रति आस्था का न होना, धार्मिक कट्टरता एवं दुराग्रह का विरोध, चित्त की शुद्धि पर बल जैसी सामाजिक विषमताओं का वर्णिन कबीर की कविताओं में मिलता है। कबीर ने मानव को जोड़ने का कार्य किया, तोड़ने का नहीं। कबीर का मानना था कि ईश्वर को कहीं खोजने की आवश्यकता नहीं वह तो सर्वत्र है, सबके ह्रदय में, ह्रदय में बसे सत्य में निवास करता हैं। कबीर ने अगम, अगोचर, अरुप, परमतत्व का अनुभव कर उसे लिस वाणी में व्यक्त किया, वह सच्चे अर्थों में एक संत की वाणी थी। उनकी भक्ति – भावना किसी ग्रंथ पर आधृत नहीं, बल्कि अंतरात्मा की आवाज है। सत्य के अन्वेषी कबीर हर धर्म–हर जाति में ऐक्य चाहते थे। 'सौंदर्य' भले ही नया शब्द हो, परन्तु यह मानव के साथ सदैव से जुड़ा रहा है। सौंदर्य मन की अनुभूति का नाम है। कबीर के काव्य में वस्तु – सौंदर्य के रूप में सामाजिकता को आधार बनाया गया है। कबीर पर भारतीय चिंतन – परंपरा का अत्याधिक ग्रभाव पड़ा है। वेद, उपनिषद्, धर्मसूत्र, स्मृति–ग्रंथ, शाक्त साधना, बौद्धदर्शन, जैन–धर्म, हठयोग जैसी साधना पद्धतियों एवं पंथों की छाया कवि की विषयवस्तु पर दिखाई देती है। कवि की काव्य रचना का आधार समाज है। कबीर स्वभाव से संत एवं कर्म से साधक थे। उन्होनें समाज की विषमताओं से कभी समझौता नहीं किय और ना ही वह पलायनवादी रहे। इसलिए वह कहते हैं –

कबिरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठ हाथ।

जो घर फंके आपना, चलै हमारे साथ ।।

समाज – कल्याण ही उनका लक्ष्य था। उनकी गहन अनुभूमि ही अभिव्यक्ति का आधार रही, इसलिए उनकी वाणी में समाज के विविध चित्र हैं। इन चित्रों में सत्य की मुखरता है। कवि के सत्य में उदात्त विचारों का समावेश है। यह उदात्तता युगीन सत्य को तो व्यक्त करती ही है, साथ ही भविष्य द्रष्टा के रूप में मानव के पथ को भी आलोकित करती है। कबीर मानव जीवन

की सतत धारा के कर्णधार रहे। कवि की वाणी में सामाजिक दायित्व – बोध के स्वर मिलते हैं। कबीर की कविताओं में भक्ति सौंदर्य भी अपने उत्कृष्ट रूप मे दिखाई देता है। इसी भक्ति के द्वारा कवि ने समाज सेवा का बीड़ा उठाया। भक्ति द्वारा ईश्वर तक पहुंचने का सही मार्ग गुरू ही दिखाता है, किन्तु यदि गुरू ही कुमार्ग पर चले तो शिष्य को सही रास्ता कौन दिखाएगा ! कहा गया है – पुराणमित्येव न साधु सर्व नवीन मित्येव न साधु सर्वम्। अर्थात् प्राचीन भी सर्वोत्तम नहीं होता, समयानुसार उसमें विकार आ जाते हैं और नवीन भी वर्तमान की आकांक्षाओं को पूरी तरह पूरी नहीं कर पाता, अतः दोनों में संतुलन प्रत्येक युग की आवश्सकता है तथा इसी में सौंदर्य समाया है। कबीर ने कहा कि समय के साथ गुरू शिष्य के संबंधों में परिवर्तन आता आवश्यक है, परन्तु यह परिवर्तन एक सीमा तक होना चाहिए, अन्यथा गुरू की महानता एवं शिष्य की निष्ठा दोनों की समाप्त होते जायेगें। कनियुग के गुरू एवं शिष्य की परंपरा का वर्णन करते हुए कबीर कहते हैं कि गुरू के अज्ञानी होने पर शिष्य महाअज्ञानी होगा तथा उनकी स्थिति उन दो अंधों के समाज होगी, जो एक दूसरे को ढकेलते हुए आगे बढ़ेंगे तथा अज्ञानरूपी कुंए में जा पड़ेंगे –

जाका गुरू भी अंधला, चेला खरा निरंध।

अंधहि अंधा ठेलिया, दोनों कूप पड़ंत।।

(गुरूदेव को अंग)

वर्तमान संदर्भों में गुरू एवं शिष्य की स्थिति इससे भिन्न नहीं। कबीर तो समाज में ऐसे गुरू की कल्पना करते हैं, जो अपने शिष्य के चित्त को स्वर्ण की तरह बना दें। सभी जानते हैं कि संसार रूपी सागर से पार उतरने के लिए हरि स्मरण आवश्यक हैं, फिर भी कोई उस पर अमल नहीं करता, अतः कबीर कहते हैं कि मृत्यु कब किसका वरण कर ले, किसी को नहीं मालूम, अतः समय रहते जीव को चेत जाना चाहिए –

लूटि सके तौ लूटियौ राम नाम भंडार ।

काल कंठ से गहेगा, रूंधे दसों दुवार ।।

(सुमिरन को अंग)

परिवार में पिता एवं पुत्र के संबंध को स्नेह का संबंध माना गया है। समाज तभी उन्नत होता है, जब दोनों को अपने कर्तव्य का ज्ञान हो। परमात्मा एवं जीवात्मा के बीच यहीं संबंध होता है, अतः जीवात्मा – रूपी पुत्र अपने असली स्वरूप को पहचान कर परमात्मा रूपी पिता से मिल जाता है। कवि कबीर ने सामाजिकता तथा अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए विभिन्न अंगों की कल्पनाएं कीं। 'भेष को अंग' में कवि ने नीति के सहारे समाज के व्यक्ति को समझाने का प्रयास किया है। कबीर के समय ईश्वर प्राप्ति के लिए अनेक आडंबर किए जाते थे, कवि उसी पर व्यंग्य करते हैं –

माला–पहरयाँ कुछ नहीं, डारिं युवा गल भारि ।

बाहरि ढोल्या हीं गलू, भीजरि भरी–भँगारि ।।

मानव जीवन की सफलता उसके सत्यनिष्ठ, संतोषी होने में है। कबीर ने सदैव सामाजिक कल्याण की कामना रखी, यही कारण है कि उन्होनें भक्ति के माध्यम से मानव कल्याण एवं समाज कल्याण का बीड़ा उठाया। कबीर का मानना है कि भक्ति के बिना योग साधनां अधूरी है। उनका कहना था कि चंचल मन को रामभक्ति में लगाकर घर बैठक ही जीव को परमानन्द की उपलब्धि हो सकती है। कबीर देखते थे कि समाज के बहुत ऐसे लोग हैं, जो चंदन–तिलक में विश्वास करते हैं, ढोंग करते हैं, जबकि स्वयं वह मानवता के पुजारी थे। उनके अनुसार, मानव आत्म स्वरूप है, यदि वह अपनी आत्मा को देख ले तो उसका कल्याण हो जाएगा। यही निराकरण भक्ति है। निराकारी राम अगम, अगोचर, कण–कण एवं संपूर्ण ब्रह्मांड में व्याप्त है। अतः समाज के नियमों का पालन करते हुए जीवन को

भक्ति के विभिन्न साधनों को अपनाकर भक्ति करनी चाहिए। नाम संकीर्तन से जीव अपने लक्ष्य की पूर्ति कर पाता है –

कबीर सुमिरन सार है और सकल जंजाल।

आदि अंत सब सोधिया दूजा देखौ काल ।।

संसार के सभी जंजालों से मुक्ति पानी है तो राम नाम स्मरण आवश्यक है। राम का नाम ही सर्वव्यापी है।

भारतीय संस्कृति एवं समाज में गुरू को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। आराध्य प्राप्ति के लिए एक मार्गदर्शक की आवश्यकता होती है। कबीर कहते हैं –

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवै पडंत ।

कहै कबीर गुर ग्यान तैं, एक आध उबरंत ।।

सद्गुरू की प्राप्ति तभी होती है, जब ईश्वर की कृपा हो।

समाज को सही दिशा दिखलानेवाला, मानव कल्याण की भावना रखने वाला ही सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति होता है। कबीर ने कभी परंपरागत भक्ति पर विश्वास नहीं किया। वह स्वानुभूतिपरक भक्ति पर विश्वास करते थे। यह स्वानुभूति मानव कल्याण हेतु जगनी चाहिए। कहते हैं, व्यक्ति को सत्संगति का लाभ आवश्यक मिलात है। संतो के दर्शन एवं स्पर्श से ही मन के पास धुल जाते हैं। कबीर के माधुजन जाति – वंध – कर्म – कुल से परे थे। उन्होनें संत सज्जन की सेवा को परमात्मा की सेवा कहा। मन तो पक्षी स्वरूप होता है, उसे जहां अच्छा लगता है, उड़कर पहुंच जाता है। मनुष्य जैसी संगति करता है, वैसा ही फल पाता है –

कबीर मन पंछी भया, भावै तहवाँ जाइ

जो जैसी संगति करै, सो जैसा फल खाइ।

यदि साधक सच्चा हो तो अति कठिनाई आने पर भी वह सत्संग नहीं छोड़ता। साधु की संगति सदैव अच्छी होती है –

कबीर संगति साधु की, बेगि करी जै जाए ।

दुरमति दूरि गँवाइसी, देसी सुमति बताए ।।

समाज में आदर्श की स्थापना के लिए कबीर ने ढोंगी–पाखंडी संतो का विरोध किया। समाज को शुद्ध बनाने के लिए चारित्रिक शुद्धता की आवश्यकता होती है। कबीर का मानना था कि साधु को कम से कम व्यय करना चाहिए आडंबर–रहित रहना चाहिए। जिस समाज में आर्शवादी संत होते हैं, वह समाज भी आदर्श बनेगा। समाज की उन्नति के लिए दुष्टों एवं खल पुरुषों को दूर रखना आवश्यक है। कवि ऐसे लोगों को समाज का सबसे बड़ा बैरी मानते रहे। साधु–संगति ही प्रत्यक्ष जीवन दर्शन हैं, जिससे व्यक्ति को सन्मति मिलती है तथा उसकी कुमति दुर्मति का नाश होता है। समाज में दुर्गुण के समान संशय का भी स्थान नहीं, क्योंकि संशय सब दुर्गुणों का अधिष्ठान है। अतः इससे छुटकारा पाना हो तो सद्गुरू एवं सत्संगति आवश्यक है–

ससै खाया सकल जग, संसा किनहुँ न खद्ध।

जे बेघे गुरू अष्पिरां, तिनि संसा चुनि–चुनि खद्ध।।

सज्जन व्यक्ति के जहां कहीं भी शुभ गुण दिखे, उन्हें ग्रहण कर लेना चाहिए। कबीर ने मानव–जीवन को वृक्ष के समान माना है, जिस प्रकार वृक्ष सदैव संपूर्ण शरीर सहित परहित साधन में लगा रहता है, वैसे ही मानव यदि संपूर्ण रूप से वैष्णवी संस्कृति अपना ले तो उसका जीवन सफल हो जाए।

इस प्रकार कबीर मानव–समाज–कल्याण–हेतु जनमें, जिए और मृत्यु को प्राप्त हुए। उनकी सामाजिकता में हमें

मानवीय सौंदर्य के दर्शन होते हैं। अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उन्होनें भक्ति को साधन बनाया तथा शील एवं सदाचार पर पाठ पढ़ाते हुए मानव और समाज को उन्नति की दिशा में ले गए। भक्ति को आधार बनाने के कारण समाज के सभी लोगों ने उनकी बातें सुनीं। उनकी भक्ति को सामाजिक मान्यता प्राप्त थी। उनका मानना था कि सामाजिक भेद–भाव का परित्याग कर मनुष्य को परस्पर सहानुभूति एवं प्रेम से रहना होगा। यदि ऐसा हुआ तो संपूर्ण विश्व का समाज आनंद से परिपूर्ण हो जाएगा। कबीर की उन पंक्तियों के साथ कि शरीर एक देवालय है, जो ध्वस्त हो गया है। अर्थात् मांस एवं हड्डियां गल गई है, उन पर धास–फूस उग आई हैं, अतः हे जीव ! तू इसके निर्माता प्रभु से प्रेम कर, जिससे दूसरी बार देवालय ढहने का अवसर न आए अर्थात् दूसरी बार जीव को शरीर ही धारण न करना पड़े –

कबीर देवल ढहि पड़ा, ईंट भई सैवार ।

करि पिजारा सौं प्रीतड़ी, ज्यूँ ढहै न दूजी बार ।।

संदर्भ

- अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृताम्यहम्। परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
- भारतीय संस्कृति विविध आयाम, सं. डॉ. शशिप्रभा कुमार, समन्वय भावना लखन लाल मेहरोत्र का लेख।
- संस्कृत–हिन्द कोश, वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास।
- हिन्दी आलोचना के बीच शब्द, डॉ. बच्चन सिंह
- संत साहित्य में दलित चिंतन, डॉ. अनिल कुमार
- कबीर साहित्य चिंतन, आचार्य, परशुराम चतुर्वेदी।
- सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, सं. प्रभाव झा
- हिन्दी कविता में युगांतर, डॉ. सुधीन्द्र
- साहित्य और राष्ट्रीय स्व0 डॉ. फतह सिंह
- भारत की संस्कृति और कला, डॉ. राधाकमल मुखर्जी
- कबीर, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

Copyright © 2017, Dr. R.P.Verma. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.